ये डूबना साहिलों पे

हुश्न तवस्सुम निहाँ

ये डूबना साहिलों पे

'अम्मी... ओ अम्मी... जल्दी उठो... सुनो तो... नसीमा भाग गई...'

'हैं... कि...किसके साथ...?' अम्मी चद्दर फेंक के उठ बैठीं। और आँखें फाड़े, रजिया को देखने लगी। तब तक रजिया दूसरे कमरे में दौड़ गई थी -

'हे... रज्जन ...हे रज्जन... उठो तो... कुछ सुना ...नसीमा भाग गई..'

https://www.hindiadda.com/ye-dubana-sahilon-pe/

'सच्ची ...किसके साथ...?' वह झपट के पलँग से नीचे उतरा और पलँग के नीचे झाँक-झाँक के चप्पलें तलाशने लगा। तब तक वह किचन में दौड़ गई।

'है जमीला... नसीमा का सुना... भाग गई बेचारी...'

झल्ल से घूमी जमीला।

'हाय! ...किसके साथ...?'

वह अनसुनी करके उल्टे पाँव भाग आई और आँगन में पड़े पलँग पर बैठ मोबाइल पर नंबर डायल करने लगी। तब तक घर के सारे फर्द अपने-अपने कमरों से बाहर निकलने लगे जैसे दड़बों से मुर्गियाँ निकल रही हों। अभी फज्र की सदा आने-आने को थी। मस्जिदों के माइकों से फूँ...फूँ... की आवाज लग रही थी जो प्रायः अजान होने से कुछ क्षण पहले आने लगती है मानो फूँक-फूँक के माइक का गला साफ और सुरीला किया जा रहा हो। लंबे चौड़े आँगन में चार-चार पलँगें यहाँ-वहाँ पड़ी थीं। चारों-पाँचों फर्द आ-आ के चारपाइयों पर बेतरतीबी से सज गए। अम्मा हैंडपंप से पानी उतारने लगीं। कि छड़ी टेकती हुई दादी भी अपने हुजरे से निकल आईं। जमीला ने लपक के उनके कान में मुँह लगाया और चिल्लाई 'दादी अम्मा..., नसीमा आपा भाग गईं.'

'हैं... आ गई... कहाँ है... दिख नहीं रही नसीमा बेटी...।

कहते हुए दादी माँ चश्मा चढ़ाती इधर-उधर देखने लगीं। जमीला चिढ़ गई।

'उफ् ये... दादी माँ हमेशा उल्टा सुनती है। अल्लाह ने इन्हें बहरा करके इन पे नहीं हम पे जुल्म किया है। कितना चीखना पड़ता है। 'अरे दादी अम्मा, नसीमा आपा भाग गईं...' और इस बार दादी अम्मा ने सब सुन लिया।

'या अल्लाह... रहम... मुला किसके साथ भागी माटी मिली...?'

तब तक अम्मा हाथ-मुँह धो वजू करके दादी अम्मा की तरफ बढ़ आईं और दुपट्टे के आँचल से हाथ-मुँह पोंछती बोलीं -

'अब यही तो पता नहीं, बड़ी अंधेर है भई...'

- दादी अम्मा उनकी बातों से बेखबर बड़बड़ाए जा रही थीं।

'क्या मालूम कब ये लड़कियाँ नाक कटवा दें... क्या बीत रही होगी शरीफ मियाँ पर। दरवाजे पर कल बारात आनी है और दुल्हन लापता... या अल्लाह... भई रज्जब अब इन दोनों को भी जल्दी से निबटा ही दो... इज्जत से चली जाएँ वही बेहतर हैं...' जमीला ने बुरा सा मुँह बनाया और किचन की तरफ बढ़ गई। रजिया कोनेवाली चारपाई पर किनारे बैठी मोबाइल पर किसी गुफ्तगू में मशगूल थी। अम्मा नमाज पढ़ने लगी थीं। अब्बा गुमसुम निरपेक्ष भाव से सब सुनते रहे फिर मस्जिद की तरफ निकल लिए। रजाक ढाबली में कैद कबूतरों, मुर्गियों और खरगोश के बच्चों को आजाद करने लगा। जमीला ने चाय की प्यालियाँ लाके रजाक और दादी अम्मा को पकड़ा दीं फिर रजिया को एक प्याली पकड़ा के वहीं उसी के पास बैठ गई -

'लेकिन बाजी, तुम्हें ये खबर दी किसने...?'

रजिया ने मोबाइल बंद कर दिया और खुफिया निगाहों से उसे देखा -

'सुगरा ने ...'

'सुगरा...?'

'हाँ, सुगरा के पास वह पर्चा लिख कर डाल गई है। उसी ने मुझे फोन किया था...'

'कहाँ जा सकती हैं, कुछ अंदाजा है?'

'.....' रजिया ने 'ना' में सिर हिलाया।

'क्यूँ किया ऐसा नसीमा आपा ने...'

'अरे कुछ नहीं, बस अगर लड़की जहीन है और उसके पास शोहरत भी है तो समझो उसका बेड़ा गर्क। मर्दों की दुनिया ऐसी औरतों को बर्दाश्त नहीं कर पाती। उसे गूँगी, बहरी लड़कियाँ पसंद हैं।' कि आँगन का दरवाजा फड़ाक से खुला -

'रजिया... जमीला ... कहाँ गईं...सब ?'

'हाँ चचा, आदाब...'

'ये बताओ, वो कमबख्त, नासपीटी इधर आई है...?'

'जी...?'

'वही नसीमा...'

'क्या हुआ शरीफ भाई... खैरियत तो...?'

'अरे भाभी जान, क्या खैरियत, चली गई बेहया रुसवा करके, बारात दरवाजे पर खड़ी है और...' कहते हुए शरीफ मियाँ उल्टे पाँव बाहर निकल गए, अम्मा चारपाई पर बैठती बोलीं -

'मगर ये नहीं पता चला भागी किसके साथ...?'

- रजिया झुँझलायी

'तुम भी अम्मी... लड़कियों के भागने का क्या एक ही मतलब होता है कि वह किसी के साथ भाग गई। वे अकेली नहीं भाग सकतीं? उसके भागने की दूसरी वजहें नहीं हो सकतीं? क्या उसके घर छोड़ देने की वजह सिर्फ इश्क ही होता है। हद कर दी...'

'ओ...हो... तो आप नसीमा की वकालत करेंगी... करो भई करो... दोस्त हो ना...'

'नहीं अम्मी, दोस्त तो बहुत बाद में हूँ पहले लड़की हूँ। लड़कियों को भी जीने का हक है। उन्हें भी जीने-मरने के हक मिलने चाहिए। वे भी जानदार शय हैं कोई लोहा, काँसा नहीं कि अपनी मर्जी से जहाँ चाहा वहाँ जड़ दिया। कहाँ तो वह रिसर्च स्कॉलर और देश भर में मशहूर मकबूल शाईरा। जिस नशिश्त या मुशायरे में चली जाती है महफिल में चार चाँद लग जाते हैं। बड़े-बड़े ओहदेदार लोगों के साथ उसका उठना-बैठना है। कितनी इज्जत और शोहरत है उसकी, और शरीफ चचा लाए हैं उसके लिए ढूँढ़ कर धुंध में डूबता उतराता एक अदद बदरंग गार्दिशमंद सितारा। उन्होंने ये नहीं देखा कि उनकी जहीन और हसीन बेटी पे ये मर्द फबेगा कि नहीं। लड़कियों की खुशियों की कीमत सिर्फ दौलत से क्यूँ लगाई जाती है। क्या लड़की का ख्वाब नहीं होता कि उसका शौहर खूबसूरत हो, जहीन हो, नवजवान हो...?

'कुछ भी हो, हम लोगों का वक्त था कि माँ-बाप ने जिसके भी हाथ में हमारी लगाम दे दी, चुपचाप उनके पीछे चली गईं। जुबान पे उफ भी ना लाया गया।'

'तुम्हारे वक्त में तो लड़कियों को पैदा होते ही दफना दिया जाता था, वो क्यूँ नहीं किया?'

'हम इत्ते बेरहम नहीं थे...'

'और बेटी को भाड़ में झोंक देना बेरहमी नहीं...?'

'भाड़ में क्यूँ, क्या कमी है उस आदमी के यहाँ, दौलत पटी पड़ी है। खेत, बगीचे, बड़ा सा हवेलीनुमा घर...'

'बस्स... बस्स... रहने दो अम्मी...' वह तुनक के उठी और कमरे में चली गई। जमीला ने चुटकी ली

'लो अम्मी, नाराज कर दिया बाजी को...'

'हुँह... नए दौर की छोरियाँ... देखो क्या गुल खिलाती हैं... पैदा होते ही इन्हें दफना दिया गया होता तो ज्यादा बेहतर होता।'

'भई-रज्जाक कहाँ उलझे हो कबूतरों में, कभी फज्र भी पढ़ आया करो...'

- रजाक ने हो...हो हँस के बात हवा में उड़ा दी और अम्मी के पास आ के बैठ गया

'अम्मी... लाओ पाँच सौ रुपए दे दो, फीस जमा करना है...'

'पाँच सौ फीस...'

'हाँ, पाँच महीने की फीस है...'

'और वो जो चार महीने से दे रही हूँ वो...?'

'ओ...फ...फो...ह... अम्मी, तुम बहस कितना करती हो जरा सी बात पर।'

'ये जरा सी बात है, फीस बता के ले जाते हो और गुलछर्रे उड़ाते हो ये जरा सी बात है कि चार साल से इंटर में ही लटके हुए हो... साथवाले आगे बढ़ गए... तुमसे छोटी जमीला तुमसे पीछे थी और आज आगे चल रही है...।'

'तो फेल हो जाता हूँ तो मैं क्या करूँ?'

'क्यूँ फेल होते हो... लड़कियाँ नहीं फेल होतीं, उन पर घर के कामों का बोझ है फिर भी अव्वल आती हैं। तुम हटो-हटो घूमते हो दुम फटकारते, पढ़ाई के नाम पे फिर भी ठेंगा...' खर्चे तुम्हारे राजकुमारों जैसे... तुमसे भली तो लड़कियाँ... खुदा ने तेरी जगह एक और लड़की क्यूँ ना दे दी आज जी तो ना जलता...'

'और जो अभी लड़कियाँ को पैदा होते ही दफना देने की बात कर रही थीं वो...?

'ये ल्लो... पाँच सौ रुपए और दफा हो जाओ...'

'करती हो वही काम मगर दुनिया भर का बक-झक के... जाता हूँ जाता हूँ...' कहते हुए रजाक ने रुपए अम्मी के हाथ से झिटक लिए तो झाड़ू लगाती जमीला ने बुरा सा मुँह बना के अम्मी को घूर दिया। अम्मी किचन में घुस गईं। रजिया स्कूल के लिए तैयार होने लगी। नजदीकी मॉन्टेसरी स्कूल में वह अध्यापिका है। तभी अम्मी की आवाज कमरे में छनकी -

'रजिया, आज छुटटी क्यूँ नहीं कर देतीं...'

'नहीं अम्मी आज अल्पसंख्यकों का वजीफा बँटना है... जाना जरूरी है...'

'ओ...हो... तो क्या नूरा की बेटी भी पाएगी वजीफा...?'

'हाँ, बिल्कुल...'

'तब ठीक है, बेचारी के आँगन की दीवार तामीर हो जाएगी... इसके सहारे कब से खुल्ले में रह रही है।'

'अम्मी..., ये वजीफे गौरमिंट घर तामीर करने के लिए नहीं, बच्चों की पढ़ाई जारी रखने के लिए देती है...'

- रजिया कमरे से निकलती हुई बोली।

'अरे बस, रहने दो... मुई गौरमिन्ट क्या यहाँ देखने आती है...?'

'हाँ, ये तो है...' कहते हुए सदर दरवाजे की तरफ बढ़ी कि वहाँ तक पहुँचने से पहले ही दरवाजा धक्के से खुल गया। अब्बा लौट आए थे। वह बाहर निकल गई अब्बा ने जमीला को आवाज लगाई

'भई जमीला..., चाय...वाय मिलेगी...' सुनते ही अम्मी चहकीं

'अरे, कुछ सुना तुमने...।'

'हाँ...हाँ... सुना है... यहीं से सुन कर गया हूँ, एक बात दस दफा बताती हो। दूसरों की खिल्ली उड़ाने में बड़ा मजा आता है... और सुनो... तुम्हें रेवड़ियाँ बाँटने की कोई जरूरत नहीं है... खामोशी से घर में बैठना... सब... अल्लाह की मर्जी...। शरीफ मियाँ

भी कम खतावार नहीं...। भई बच्चों के साथ इंसाफ करो... उनकी ख्वाहिशात की कद्र करो... हम ही उन्हें ना समझेंगे तो कौन समझेगा...?'

...जैसे जमीला के मुँह की बात छीन ली थी अब्बा ने खिलाखिला पड़ी। अम्मी ने सकपकाते हुए उसे घूर कर देखा, परांठे बेलने लगी।

लंबे-चौड़े आँगन में शरीफ मियाँ पैंतरे भाँज रहे थे। बड़े से उस आँगन में चार-पाँच पलँगें बिछी हुई थीं जिसमें से एक पर उनकी बेगम, यानि नसीमा की अम्मी और जलाजुल्त भाई बैठा था, बेगम का चेहरा बुझा हुआ, आँखें सूजी सी थीं। भाई की आँखों में खून उतरा था। बाकी पलँगों पर शादी में शिरकत करने आए मेहमान बैठे थे। औरतें-बच्चे यहाँ-वहाँ छितरे थे। कमरे-बरामदे में भी गच-पच थे। मगर नितांत सन्नाटा। आँगन में एक तरह की वहशी खामोशी पलथियाँ खा रही थी। आवाज आती थी तो सिर्फ शरीफ मियाँ की। और लगता, घर में शरीफ मियाँ के सिवा दूसरा कोई है ही नहीं। सुगरा अलबत्ता काले-अँधेरे कमरे में दुबकी पड़ी थी। शरीफ मियाँ अपनी बेगम को काट-काट खाने को दौड़ रहे थे -

'तूने...ही औरत... तूने ही लड़कियों को आवारा बना डाला। दे...पढ़ाई...दे... पढ़ाई बस पढ़ाई...। कितना मना किया लड़कियों को मत पढ़ा... मत स्कूल भेज... मगर नहीं, तूने तो लड़कियों को आवारा बनाने की कसम उठा रखी थी। और यही नहीं...

- वह नसीमा के खालू से मुखातिब थे -

'शहजादी साहिबा बेहतरीन गजल निगाराँ भी थीं। मुशायरे पढ़ने जाती थीं। मर्दों के बीच बैठ के रदीफ -काफिये की 'ऐसी की तैसी' की जाती थी।'

'गलती तुम्हारी है। जब वह इस शादी के खिलाफ थी तो क्यूँ उस पर दबाव डाला। अपनी उम्र का दूल्हा अपनी बेटी के लिए तजवीज किया...' अम्मी से बर्दाश्त ना हुआ। बोल गईं।

'हाँ...हाँ... तो तू ही लौंडा तलाश लेती। अरे जहूर मियाँ बड़ी मुश्किल से यही राजी हुआ था। यहाँ तो लोग उसकी काबलियत और शोहरत की जम कर तारीफ करते हैं। मगर जब उनसे इसकी शादी की बात की जाती तो सुननेवाले के होश उड़ जाते। साँप सूँघ जाता है। सितारे दूर से भले ही शोख लगते हों बेगम... मगर उन्हें गदेली पर उठा लेने का रिस्क कोई नहीं लेता..., बहरूनी लड़कियों को भी कोई पूछता है... जो लौंडों की

तरह हटो-हटो घूमती-फिरती हैं। वो भी बेनकाब... बेशर्म ने बस नाक कटवा के रख दी, क्या जवाब दूँ सबको...?

'अब छोड़ो भाई जान, जाने दो... जो हो गया, हो गया...'

'ओहो...जाने दूँ... कैसे जाने दूँ... तू मत बोलना हिना, तू कम नहीं, तुम दोनों फुफो-भतीजी की मिली भगत थी। उसे चढ़ाने में तूने भी कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। तुम्हारे आगे भी बेटियाँ हैं... अल्लाह तुम्हें भी दिखाएगा... जैसे मेरा घर बर्बाद किया है...'

'मेरे साथ कुछ नहीं होगा भाईजान... मैं अपने बच्चों की मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं करने जा रही... और अगर कहते हो मैंने तुम्हारी बेटी को बिगाड़ा है, तो ऐसा ही सही, क्या कर लोगे मेरा...?'

- कहती हुई कमरे में घुस गई और अपना सामान पैक करने लगी, कोने में गुड़मुड़ पड़ी सुगरा दौड़ के लिपट गई।

'मत जाओ फूफी ...या तो मुझे भी ले चलो... अब्बा मुझे मार डालेंगे... बड़े बेहिस हैं ये लोग...'

'क्या करूँ बिटिया... मजबूर हूँ... वर्ना हूँ तो मैं भी इसी घर की बेटी...' वह कुछ देर सुगरा को लिपटाए बैठी रहीं, फिर एक झटके से अलग किया और सामान उठा के बाहर निकल गईं। पीछे-पीछे उनके शौहर और बच्चे हो लिए। किसी ने रोका तक नहीं। अब सुगरा की बारी थी। एक दहाड़ सुनाई पड़ी -

'सुगरा ओ सुगरा की बच्ची... बाहर निकल...'

सुगरा काँपती सी सिर झुकाए आँगन में आ खड़ी हुई।

'कहाँ गई है वो हरामजादी...?'

'जी... जी... वह गई है अपने लिए जन्नत का रास्ता ढूँढ़ने...'

- कहना था कि एक जोरदार थप्पड़ उसके गालों को सुजा गया -

'बड़ी शायरी आती है... शायराना जुवान बोलती है मुझसे...'

'उसने यही कहा था अब्बा, और कहा था अब वह नहीं आएगी'

- सुगरा ने रोते हुए बयान किया।

'कहाँ गई हैं वह...?'

'मुझे नहीं मालूम...? शरीफ मियाँ ने लपक कर उसके बाल पकड़े और घसीटते हुए ले जा कर कमरे में पटक दिया। बाहर से कुंडी चढ़ाई और फिर चीखते हुए होशियार किया -

'सुन कमीनी..., जब तक तू नहीं बताएगी... वह कहाँ है, तू यहीं बंद रहेगी। ना तुझे खाना मिलेगा ना पानी...' बेगम हक्का-बक्का खड़ी देखती रह गईं।

- एक-एक कर सारे मेहमान जा चुके थे। घर में सिर्फ तीन ही फर्द रह गए। शरीफ मियाँ, उनकी बेगम और बेटा सलीम। सलीम दोनों बहनों से बड़ा था। शरीफ मियाँ ने बेटे सलीम को दूल्हे के घर बारात ना लाने के लिए कह कर भेज दिया। मोहल्ले ही नहीं कस्बे भर में बात फैल गई। जिल्लत व शर्म से कटे पड़े शरीफ मियाँ ने घर से बाहर आना-जाना बंद कर दिया। कोई पट्टीदार मिजाजपुर्सी में आता तो वह बेटियों की माँ को जी भर गालियाँ देते। गुस्सा और जिल्लत से चेहरा काला पड़ जाता और नसीमा को कत्ल कर देने की कसम खाते...'

'एक बार वह सामने आ जाए, उसकी बोटी-बोटी चील-कव्वों को ना लुटाऊँ तब कहना...'

सुगरा से तहकीकाती पूछ-ताछ जारी थी। रोज, बाद मगरिब के कमरा खुलता। फिर सुगरा की धुनाई के साथ पूछताछ शुरू होती। ना बाप कम, ना भाई कम, थप्पड़-पे-थप्पड़। घूँसे पे घूँसे। और वाहिद एक सवाल -

'कहाँ गई है नसीमा...?'

- वही एक जवाब -

'मैं नहीं जानती...'

- अम्मी बेगम दरवज्जे के बाहर छटपटाती रहतीं। छाती पीटती रहतीं... किंतु क्या हासिल...? सुगरा के चेहरे से जिस्म तक पर काले-काले ठप्पे और चकत्ते उभर आए थे। खाना-पीना स्वतः छूट गया था। चोरी-छिपे अम्मी बेगम ही किसी तरह जिलाए थी। हाजत के वक्त वह शरीफ मियाँ से इजाजत ले कर उसे निकाल लातीं और मुट्ठी में बंद रोटी के टुकड़े या ब्रेड चुपके से उसे पकड़ा देतीं। जिसे वह पाखाने में बैठ के खा

लेती और पानी पी लेती। फिर मुजरिम की तरह ले जा कर कमरे में बंद कर आतीं। शरीफ मियाँ निहायत चौकन्ना। हल्की सी 'खट' की आवाज पर भी गहरी नींद से जाग उठते। बैठे-बैठे खुद-ब-खुद गालियाँ बकने लगते। सदमा और जलालत उन्हें पागल बनाए जा रहे था। खुद भी सूख कर काँटा हो गए थे। मगर अहद किया था कि 'नसीमा का सुराग लगा के रहूँगा।' जो उन्हें ठेंगा दिखा के चलती बनी। उनकी ढील का फायदा उठाया। सुगरा की यातनाओं का दौर खत्म होने का नाम नहीं ले रहा था। दर्द, गम और तकलीफ की वजह से उसका जेहन सुन्न होता जा रहा था। अब ना रोती थी, ना कुछ कहती थी। चुपचाप बैठी शून्य में तकती रही। कपड़े मैले चीकट हो रहे थे। उसके अपने आप से ही मरे सड़े हुए जानवर के जैसी बदबू फूटती रहती। जिस्म पे सिर्फ हड्डियाँ बची रह गई थीं। गोश्त का अता-पता नहीं। आँखें... कुएँ में डूब रही डोंगियों जैसी। त्वचा पपड़ा गई थी। कभी-कभी उसे लगता वह कब की मर चुकी है। और अब उसकी पागल, आवारा रूह उसकी लाश के चक्कर काट रही है। तवाफ कर रही है। जिस सुगरा के अस्तित्व से सौंदर्य फूटता था, वही देह अब कुरूपता की बानगी बन गई थी। कभी आम राय हुआ करती थी -

'शरीफ मियाँ की दोनों बेटियाँ, दो हीरों की तरह हैं। एक सूरत में बेमिसाल, दूसरी सीरत में लासानी। अगर नसीमा की काबिलियत के चर्चे आम थे कस्बे भर में तो सुगरा की खूबसूरती के भी चर्चे कम ना थे। स्कूल-कॉलेज में तो मनचलों की भीड़ पंखियों की तरह मँडराती रहती थी उसके आस-पास। ये बात अलग है कि सुगरा किसी को हिरकने नहीं देती अपने आस-पास...। और, आज उसी चेहरे पर चोटों और जले के बेशुमार निशान चस्पा थे। मगरिब की अजान होते ही वह कोड़े खाने की तैयारी कर लेती। हालाँकि अब वह माजूर और लाचारी में जी रही थी। अब जैसे यातनाएँ ही उसका प्रारब्ध बन गई थी। खड़ी होने की ताकत नहीं। रोने तक की हिम्मत नहीं। किवाड़ें खुलते ही खड़ी हो जाती। शरीफ मियाँ तपती करछुल और दूसरे हाथ में दोहरी की गई केबिल लिए दाखिल होते। फिर सुलगती करछुल उसके रेशमी जिस्म को दागने लगती, दूसरी तरफ से केबिल के कोड़ों की बरसात। जहाँ पड़ जाती, वहाँ घाव बनके पानी छूटने लगता। उस एक वक्त में बाप शैतान बन कर उतरता। अब ना सुगरा को याद रह गई थी इस यातना की वजह ना शरीफ मियाँ को। वे अपनी-अपनी ड्यूटी निबाहते हुए हस्ब-ए-मामूल अपने कामों को अंजाम देते। सवा-साँझ से ही चूल्हा जलते ही एक काँसे की करछुल का पिछला हिस्सा चूल्हे में खोंस देते। अम्मी देख-देख हुलसती रहतीं। मुँह पे आँचल दबा-दबा के सिसकती रहतीं। हाथ-पाँव जोड़ती रहती। मगर वह इंसान हों तब ना। अम्मी बेगम की एक ना चलती। मगरिब की नमाज से फारिग होने के बाद वह तपती करछुल और कोड़ा उठाते और सुगरा के कमरे में

दाखिल होते। साथ में इकलौता बेटा भी। अम्मी बेगम कलेजा थाम के बैठ जातीं। सुगरा सारे इम्तेहानात से गुजर के, खामोशी से चुपचाप पलँग पे पड़ रहती - मन ही मन कोसती -

'नसीमा आपा, तुम तो जन्नत का रास्ता ढूँढ़ने निकल गईं, और मुझ गरीब को दोजख के हवाले कर गईं... तुम तो जन्नत पा ही जाओगी मगर ये दोजख मुझे कब्र में पहुँचा के ही छोड़ेगी...'

एक सुबह नसीमा ने रजिया को फोन किया तो रजिया फट पड़ी -

'...ऐ...नसीमा की बच्ची, तू तो निकल भागी दोजख से और सुगरा को छोड़ गई सुलगने के लिए...'

'तो क्या करती, उस पचपन साल के गधे से निकाह पढ़वा लेती? जिसे अपना नाम लिखना भी नहीं आता। मैं खुदकुशी कर लेती? या फिर उसके बच्चे पैदा कर-कर के रेगा होती रहती? क्या तुमने नहीं कहा था कि इस आदमी से शादी ना करना किसी भी कीमत पर। और क्या अब्बा ने नहीं कहा था कि मुझे उनके घर में रहना है तो उनकी बातें माननी पड़ेंगी... शादी करनी ही पड़ेगी... किसकी बात मानती, तुम्हारी या उनकी। वैसे सच पूछो तो ना तुम्हारी, ना अब्बा की मैंने अपने दिल की आवाज सुनी, वही मानी। ...रजिया, ये हमारे मअशरे के लोग अपनी बेटियों के लिए शौहर नहीं ढूँढ़ते एक मर्द ढूँढ़ते हैं... मर्द... सिर्फ एक अदद मर्द। वो लूला, बहरा, अंधा, लँगड़ा कुछ भी हो इससे कोई सरोकार नहीं।'

'सो तो दुरुस्त है नसीमा, मगर अब सुगरा का क्या हो। वह तो कैद कर ली गई है। उजाले का मुँह तक नहीं देख पाती। तेरे हिटलर अब्बा ने हमारे आने-जाने पर भी रोक लगा दी है।'

'ये सब बेकार की बातें हैं। जुल्म तब तक ही अपने वजूद में है जब तक जुल्म सहनेवाले बा-वजूद हैं। मैं कहती हूँ जुल्म क्यूँ सहा जाए। वो सुगरा हो या कोई भी। मैंने उससे साथ आने को कहा था, वह नहीं आई। ...रजिया, ये वही माँ-बाप हैं कि बचपन में हम जिस खिलौने पर उँगली रख देते थे, ये बगैर उसकी कीमत पूछे हमारी झोली में डाल देते थे। कपड़े, गहनों के लिए हमारी पसंद का खास ध्यान रखा जाता था लेकिन जब जिंदगी का सबसे अहम फैसला लेना हुआ तो हमारी पसंद ना पसंद दरकिनार कर दी गई। हमारे समाज के मर्दों की वो कैफियत है कि अगर उनकी बहन-बेटियों की खूबियों की कोई गैर-मर्द तारीफ ही कर दे तो हमारे बाप-भाई की

गर्दन शर्म से झुक जाती है। गैरत के मारे पानी-पानी हो जाते हैं। हमारी खुसूसियात भी उनके लिए गैरत की चीज है...'

'अब लेक्चर छोड़, बता, तू है कहाँ...?'

'पहले बता कोई आस-पास तो नहीं है...?'

'नहीं...नहीं...' वह इधर-उधर कनखियाती बोली।

'तो सुन, मैंने जौनपुर में तिलक इंटर कॉलेज में नौकरी कर ली है। यहाँ की प्रिसिंपल साहिबा भी मशहूर शाईरा है। इन्हीं के घर में मैं रह रही हूँ। बेहद अच्छी इंसान हैं। तुम्हें इतना करना है, सुगरा से किसी तरह मिलो और उसे किसी तरह से वहाँ से निकलने को कहो। वहाँ से जौनपुर के लिए सीधी बस मिलती हैं। वह बस पकड़ कर आ जाए। मैं बस स्टॉप पे ही मिलूँगी। अपना पता, भी तुम्हें एसएमएस किए देती हूँ। सुगरा को दे देना। मेरा नया सेल नं. भी। तुम्हें ये काम कैसे भी करना है और देखना, इस बात की किसी को भी भनक ना लगे...'

'ठीक है, तुम अब फोन बंद करो...'

दिन भर सुगरा पड़ी-पड़ी रोती रहती, सोती रहती। समझ नहीं आ रहा था कैसे इन जल्लादों से छुटकारा पाया जाए। अभी जब एक घंटा पहले आँख लगी तो नसीमा सामने खड़ी थी। वह कह रही थी -

'सुगरा, मैं सलमा की ससुराल में हूँ और मजे में हूँ...'

वह चौंक कर उठ बैठी। आँख खोला तो सामने की आकृति गायब। जिस्म फोड़े सा दुख रहा था। करवट लेना मुहाल। उठते-बैठते तड़प ही तड़प। टीस ही टीस। खड़ी होने तक की हिम्मत नहीं। महीने भर से यही हाल। और जाने कब तक... शायद मौत आने तक...। आज उठने की ताकत तक नहीं। अब तो जिस्म घावों से भर गया है। घाव सड़ने भी लगे हैं। पानी सा रिसता है। बदबू मारता है। नाक नहीं दी जा रही। वह धीमे-धीमे हाथ पाँव हिला-हिला देखने लगी जान है कि नहीं...! कि मगरिब की अजान की सदा आई। करीब महीने भर से वह दिनों के उतार-चढ़ाव और वक्त की हरारत पहरों का हिसाब अजानों की मार्फत ही लगा रही है। अब फज्र... अब जुहर... अब अस्र... अब मगरिब और अब ...ईशा... यानि एक दिन पूरा हुआ। खैर उसने मगरिब की सदा सुनते ही आँखें भींच लीं

'या अल्लाह... अब तो इस पाकीजा पुकार से ही घिन आती है। यहीं से शुरू होती हैं मेरी जानलेवा तल्खियाँ... इस सदा के साथ ही कानों में शीशे घुलने लगते हैं... जी की टीस बढ़ जाती है। क्या करूँ अल्लाह... अभी, वह अपने जख्मों को सहला ही रही थी धड़ाक से दरवाजा खुला। वह काँप गई -

'बोल कहाँ गई है वो हरामजादी... आज नहीं बताया तो मार डालूँगा जान से। रोज-रोज की मारा-मारी से थक गया हूँ अब...।'

'नसीमा के अब्बा, रहम खाओ... तुम्हारी ही औलाद है...'

'चोप्प... ज्यादा ममता मत दिखा...'

'अब्बा... अब्बा बताती हूँ... बाजी सलमा के ससुराल में है...' सुनते ही शरीफ मियाँ बेगम की तरफ मुड़े

'देखा... इतनी कटाई ना करते तो ये खुलती?' और केबिल फेंक बाहर निकल आए फिर बेटे से बोले

'सलीम मियाँ, सुबह सुल्तानपुर रवाना हो जाओ। फोन-सोन मत करना। अचानक छापा मारो...'

'जी अब्बा...'

'जब तक नसीमा आ नहीं जाती ये यहीं नजरबंद रहेगी... मैं यहीं रह के निगरानी करूँगा। तुम्हारी माँ कम छत्तीसी नहीं, ये अपना रंग दिखाएगी जरूर...'

- सुगरा की जान में जान आई थी। निढाल सी पलँग पे पड़ रही। दरवाजा बाहर से बंद। बेजान सी पड़ी रही वह। जैसे गार में गिरते-गिरते रह गई हो। साँसें तेजी से उठ-गिर रही थीं। ...उफ अल्लाह... जान बची लेकिन ...लेकिन ?

क्या नसीमा बाजी सचमुच सलमा के यहाँ होंगी...? ना हुई तब? इस बार तो सिर ही कलम कर दिया जाएगा...। इस अंगारोंवाली सजा से बचने के लिए तूफानोंवाली सजा क्यूँ तजवीज ली...। भूख-प्यास खत्म। अम्मी ने दो-तीन बार दरवाजे पे हल्के-हल्के खट-पट से इशारे किए कि झरोखे से रोटियाँ ही पकड़ ले मगर वह बेसुध सी पड़ी रही। जैसे अब उसे जिस्म जिलाए रखने की जरूरत ही नहीं रह गई। उधर पीठ किए पड़ी रही। अम्मी बेगम को अब्बा ने कमरे के नजदीक देखा तो घुड़क दिया। वह थके कदमों से लौट गईं। धीरे-धीरे सुगरा भी नीम-बेहोशी में चली गई। जाने वो गश था या नींद...।

सुबह फज्र पढ़ के ही सलीम सुल्तानपुर के लिए निकल लिया। अब्बा पहरे पर बैठ गए। आज वह नमाजें उसी कमरे के दरवाजे के बाजू में ही अदा कर रहे थे। एक-आद बार सलीम का फोन भी आया। फिर अम्मी बेगम के सेल पर रजिया का फोन आया। अब्बा ने लपक लिया -

'कौन?'

'वो चचा जान, जरा खाला को घर भेज दीजिए अम्मी को कुछ काम है...'

'ठीक है, आ रही है।' फोन कट गया।

'जाओ, तुम्हें भाभी ने बुलाया है, कुछ काम है। और सुनो जल्दी आना... आज आखिरी फैसला होना है।'

- भीतर सुगरा सुन-सुन कलप रही थी। अब क्या होगा, कैसे होगा... बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी...'

- अम्मी बेगम बुर्का डाल कर चली गईं। पहुँचते ही रजिया उन्हें सीधे अपने कमरे में ले गई -

'चचीजान... नसीमा का फोन आया था...' - फुसफसाई।

'हैं..., कहाँ है वह...?'

- जवाब में रजिया ने सारी सूरत-ए-हाल कह सुनाई।

'चची जान, सुगरा को किसी तरह निकालो वर्ना आज तो मार ही डालेंगे ये लोग...'

'बहुत बुरा हुआ रजिया बेटी। सुगरा ने मार से बचने के लिए झूठ बोल दिया कि नसीमा सुल्तानपुर में है। सलीम सुबह ही निकला है सुल्तानपुर के लिए...। अब तो सुगरा जिंदा नहीं बचेगी। ...मार डालेंगे दोनों बाप-बेटे मिल कर..., अच्छा चलती हूँ...'

'चचीजान, ध्यान रहे। कोशिश कीजिएगा...' घर आते हुए अम्मी बेगम के हाथ-पाँव काँप रहे थे। ये कौन सा तूफान आनेवाला है। खामोशी से घर में दाखिल हुई। शरीफ मियाँ ने सवाल किया

'क्यूँ बुलाया था?'

'कुछ खास नहीं दुपट्टे में फर्दी डाल रही हैं वही पूछना था कैसे पड़ती है...'

'ओह...'

अम्मी बेगम चोर नजरों से इधर-उधर देखती कमरे में हो लीं और थकी हारी सी निढाल पलँग पर पड़ रहीं। 'या अल्लाह... रहम... मेरी बेटियों का नसीब इतना काला क्यूँ बनाया।'

- तभी अस्र की अजान होने लगी। शरीफ मियाँ वजू करने के लिए गुसलखाने की तरफ निकल गए तो अम्मी बेगम ने मौका देखा और बावर्चीखाने से दो रोटियाँ हाथ लगा के सुगरा के कमरे की तरफ भागी। दीवार के पास पहुँच कर झरोखे से सट कर फुसफुसाईं -

'सुगरा बेटी, तूने क्या गजब कर डाला, नसीमा सलमा के यहाँ नहीं, कहीं और है। और... सुन... जरा करीब तो आ बहुत जरूरी बात कहनी है... तेरी रिहाई का एक रास्ता सोचा है...'

सुगरा मरी-मरी निगाहों से उन्हें अपलक देखती रही... बगैर कोई जुंबिश खाए। अम्मी बेगम को धक्का सा लगा। बेटी तो अपने आपसे ही बेगानी हो रही है। होशो-हवास खो बेठी। कुछ नहीं सूझा तो वहीं दरवाजे पर बैठ कर जार-ओ-कतार रोने लगीं। शरीफ मियाँ ने हल्ला सुना तो लपक कर उधर आए और उनका हाथ पकड़ उनके कमरे में धकेल आए।

'मनहूस कहीं की। मेरा घर बिगाड़नेवाली आज मातम मना रही है...'

रात दस बजे सलीम लौटा। देखते ही अम्मी के हाथ-पाँव ढीले पड़ गए। सिर पकड़ के बैठ गई। अब तो बस, सुगरा का कफन-दफन हो के रहेगा। सलीम शरीफ मियाँ के पास आ के बैठ गया।

'अब्बा, नसीमा वहाँ नहीं है।' सलमा कहती है यहाँ आई ही नहीं।

'वह मुई झूठ बोलती है...' अम्मा चीखीं।

'चोप्प... झूठ क्यूँ बोलेगी वह ...हाँ ...? झूठ तो तेरी इन आवारा बेटियों में रचा बसा है। आज उसकी खैर नहीं। उसका कफन-वफन तैयार रखना। नहीं चाहिए ऐसी बेटियाँ...'

'नहीं, वह बेकसूर है... मासूम बच्ची है। उसके किए की इत्ती बड़ी सजा इसे क्यूँ दे रहे हैं...'

'कल ये भी यही करनेवाली है। औरतों का भी कहीं भरोसा किया जाता है...'

- वह उठे। अम्मी बेगम हाथ-पाँव जोड़ती रहीं लेकिन सब बेकार। बेअसर...। वह उन्हें धकेलते हुए कमरे का ताला खोलने लगे। दरवाजा भड़ से धकेला। लाइट ऑन की। वह गरजे -

'क्यूँ बेहया... झूठी मक्कार... तूने भी अपनी बहन की जुबान सीख ली... तेरी इतनी मजाल... मुझसे झूठ बोला...! बोलती क्यूँ नहीं... जवाब दे...' मगर जिस्म में कोई जुंबिश नहीं, कोई हरकत नहीं। फटी-फटी आँखों से वह एक तरफ देखती रही। देखती ही रही। वह गुस्से से पागल हो रहे थे

'या खुदा ये कल-कल की जाइयाँ मुझे चकमा दे रही हैं मुझे उल्लू बना रही हैं। साली हव्वा की जाइयाँ... उठ बेशरम...

- कहते हुए शरीफ मियाँ ने केबिल हवा में लहराई कि तभी सलीम ने हाथ पकड़ लिया।

'रुकिए अब्बा और उसने सुगरा का हाथ पकड़ा तो हाथ झूल गया। जिस्म पाला। सिर ढुलका गया। शरीर काँपने लगा... थर...थर...।

'अ..ब्..बा... सुगरा मर गई...'

सुनना था कि अम्मी बेगम छाती पीटने लगीं।

'या अल्लाह... इन जालिमों ने मेरी बेटी को मार डाला। इन्हें कुत्ते की मौत मारना... हाय... सुगरा ...नसीमा की तरह तूने क्यूँ नहीं हिम्मत दिखाई... क्यूँ तूने गर्क होना कुबूल किया...'

- कि शरीफ मियाँ ने झिड़का।

'ज्यादह कोहराम मचा के मोहल्ला इकट्ठा करने की जरूरत नहीं है। आवाज बंद करो और कफन-दफन का इंतजाम करो...